Artistic Narration, Vol. X, 2019, ISSN (P) : 0976-7444 (e) : 2395-7247Impact Factor 6.854 (SJIF)

कला के प्रेरणा स्रोत, माध्यम – पारम्परिक वाश शैली

डा0 सत्या सिंह,
प्राध्यापिका, स्टडी हॉल 'प्रेरणा' स्कूल, लखनऊ
Email : satyasingh045@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

डा0 सत्या सिंह,

कला के प्रेरणा स्रोत, माध्यम – पारम्परिक वाश शैली

Artistic Narration 2019, Vol. X, pp.73-79

http://artistic.anubooks.com/

सारांश

विचारों में कला वह कल्पना है जिसे कलाकार अपनी सौन्दर्यमूलक भावनाओं से अभिव्यक्त करता है जो रेखाओं व रंगों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है और इसके लिए कुछ तकनीक की भी आवश्यकता होती है जो माध्यम बनती है। एक समग्र कलाकार चित्रकला, व्यावसायिक कला तथा छाया चित्रण आदि विधाओं में अधिकार प्राप्त कर, विभिन्न समयों में विभन्न भावनाओं के प्रभाव में आता है तो कभी–कभी वह ऐसी वस्तु का निर्माण करता है, जो देखने में लगभग दैवीय सी प्रतीत होती है। परिस्थितियाँ बदलते समय के साथ मानसिक स्थितियों को भी बदल देती है और वहीं से कलाकार का कला में निजी व्यक्तित्व बनाना भी प्रारम्भ हो जाता है। कला को प्रासंगिक होने के लिए तथा अपने कलात्मक टिकाव के लिए अपनी सांस्कृतिक जड़ों से रस ग्रहण करना पड़ेगा, क्योंकि पश्चिम की कला के टकराव से उत्पन्न चेतना के नये आयामों को भी बहिष्कृत नहीं किया जा सकता।

प्रस्तावना

कलाकार को जिन्दगी से सृजन की प्रेरण मिलती है। कलाकार जितने नज़दीक से उसे देखता है, अनुभव करता है, उतनी ही सजीव उसकी रचनायें होती हैं। यद्धपि जिन्दगी में भूख, बेकारी, गरीबी, हत्या, मौत, सभी कुछ है। यह जीवन की सच्चाई है और झकझोंरने के लिए इन्हें भी उभारना अपेक्षित हो सकता है परन्तु रोज नहीं। यह जिन्दगी का ज़हर है जो सत्यम शिवम् सुन्दरम् के उपासक कलाकार को स्वंय ही पी जाना चाहिए और देना चाहिए वह अमृत जो जीने में, जिन्दगी को सुघढ़ ओर भरी पूरी बनाने में सहायक हो"।

प्रेरणा का स्रोत जहाँ भी मिले, ग्रहण करना ही अभीष्ट है। कला के प्रांगण में अपने पराये की संकुचित साम्प्रदायिकता का कोई स्थान नहीं है, किन्तु मानव जीवन की विश्व व्यापी, अविच्छिन्न संवेदना भी राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक धरातल पर विभिन्न कोणों से देखनी और समझनी पड़ती है। यद्यपि उसका विभाजन "स्व" और "पर" के कारण ही ग्राह्य और अग्राह्य के रूप में नहीं होता लेकिन भाव दृष्टि की विशिष्टता के सन्दर्भ में तो होता ही है। ऐलीफेण्टा, अजन्ता, ऐलोरा, कोणार्क और खजुराहो प्रत्येक साधक के लिए चिरकला तक कला के प्रेरकस्थल रहेंगे, इनकी अनुकृति करना छात्रों के लिए अत्यन्त लाभप्रद है। किन्तु उसके बाद तो फिर भारत भग्नावशेषों, ऐतिहासिक भवनों का अक्षय भण्डार है।[1] कला संसार में परम्परावादी वहीं तक हैं, जहाँ तक उससे गतिरोध नहीं होता। यथार्थवाद कला साधना का पहला कदम है। अभ्यास के लिए यथार्थ किसी भवन की नीव की तरह सहायक होता है। तत्पश्चात् प्रयोग का विस्तृत संसार है यह ललित और व्यावसायिक दोनों ही कलाओं के लिए नितांत आवश्यक हैं। अपनी परम्परा को पूरी तरह पहचानने और घनीभूत सम्पर्क स्थापित कर पाने के बाद ही कोई अपने से बाहर प्रभव विकीर्ण करने अथवा बाहरी प्रभावों को स्वस्थ रीति से ग्रहण करने की शक्ति अर्जित कर पाता है। बहुत कम कलाकार ऐसे हैं, जो सचमुच देश की सांस्कृतिक जड़ों तक जाकर प्राणरस पाने में संलग्न हैं। हरबर्ड रीड के अनुसार 'प्रारम्भिक रूप सदा ही प्राणवान होता है।' अतः कला का मूल्य उसकी प्राचीनता से इंगित होता है। अधिक प्राचीन होने का अर्थ है – अधिक मूल्यवान होना और अधिक मूल्यवान होन का अर्थ है, अधिक प्रभावोत्पादक होना, इसलिए प्राचीन भारतीय कला परम्परागत मानवीय भावनाओं की प्राचीनतम ही नहीं, सुन्दरतम अभिव्यक्ति के रूप में युगों–युगों से कलाकारों की अंतश्चेतना को प्रेरित करती रही है।

कला को गूढ़ता से जानने के लिए प्राचीन भारतीय चित्रकला, मूर्तिकला तथा विविध कला शैलियों का अध्ययन और मनन तथा इन प्राचीन कला घरोहरों से निस्सीम प्रेरणा ग्रहण करना उचित है। प्राचीन कला स्तम्भों में सर्वाधिक प्रेरित करते हैं अजन्ता के महान रेखाचित्र। विश्व की महान कला कृतियाँ युगकाल बीत जाने पर भी कला के उच्च शिखर पर आसीन हैं और उनका महत्व कभी खत्म नहीं हुआ। ऐसी श्रेष्ठतम कलानिधियों की श्रेणी में अजन्ता के भित्ति चित्रों की प्रसिद्धि लोक–विश्रुत है। इनमें भावाभिव्यक्ति की प्रखरता और कलात्मक सौन्दर्य की उत्कृष्टता के अद्भुत समन्वय के कारण ही उनकी सार्वभैमिकता शाश्वतता एवं लोकप्रियता विश्व–प्रचारित है। विश्व प्रसिद्ध अजन्ता एक दिव्य और अलौकि कृति है, जिसमें सत्य, शिव और सुन्दर तीनों का पूंजीभूत समन्वय है। भारतीय चित्रकला के इतिहास पर दृष्टिपात करें, तो नवजागरण काल के प्रायः सभी कलाकारों की प्रेरणा का आगार अजन्ता

शैली के चित्र रहें हैं। इन सभी कलाकारों ने अजन्ता के भित्ति चित्रों को अपना आदर्श माना।[2] कला–सौन्दर्य के अद्‌भुत कला स्तम्भ विश्व प्रसिद्ध खजुराहो मन्दिर के इन मूर्तियों में सुकुमारता तथा आध्यात्मिकता के साथ भवाभिव्यंजना एवं अलौकिक रूप सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है। प्राचीन भारतीय कला गौरव "ऐलोरा" तथा "एलीफेन्टा" के विशालकाय मूर्ति शिल्प के आकर्षण से कैसे वंचित रह सकती थी। कलाकारों की अवरिल साधना के फलस्वरूप हुई कलात्मक उन्नति एवं परिष्कार आकारों की रेखात्मक लय में सहज ही दिखाई पड़ते हैं। यही लय कलाकार के मन मस्तिष्क में प्राणों का स्पन्दन कर जाती है और उनकी कला मुखरित हो उठती है।

वास्तव में मकबूल फ़िदा हुसैन आधुनिक कलाकारों के लिए सतत् प्रेरणा स्रोत बने हुए हैं। उनके आकर्षक व्यक्तित्व, जीवन–संघर्ष, अद्‌भुत कला–प्रतिभा और उपलब्धियों से आधुनिक भारतीय कला जगत शोभायमान है। हुसैन के चित्रों में अद्‌भुत लालित्य है। गहरे रंगाघातों तथा हल्की रंगयोजनाओं में आबद्ध इनकी खण्ड–खण्ड आकृतियों में विशिष्ट आकर्षण है।

उनके विषय अति साधारण हैं, किन्तु उनकी पेन्टिंग का नितांत सरल और नैसर्गिक रूप सरल जीवंत शैली में विषय को प्रस्तुत करता है। हुसैन की कलाशैली नें सरलता और स्पष्टता जैसे गुणों को आत्मसात किया है।

हुसैन एक प्रयोगवादी चित्रकार हैं, उनके चित्रों में भारतीय चित्रकला, मूर्तिकला व प्रतीकों के साथ पाश्चात्य कला का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। उनके चित्रों में बसी भारतीयता की सोंधी महक और रचनात्मकता की सबल अभिव्यक्ति ने कलाकारों को प्रभावित किया। जीवन के विविध पहलुओं, सामाजिक व धार्मिक परम्पराओं से युक्त विषय वस्तु पर आधारित चित्रों में संयोजित नारी आकृतियों, गायकों, वादकों व अन्य लोक प्रतीकों का सौन्दर्य हुसैन के चित्रों में भी झलकता है। हुसैन के समकालीन कलाकार बेन्द्रे तथ हैब्बार की कला के भी प्रशंसक हैं।

विश्वकला की विविध पद्धतियों को देखने समझने तथा पारम्परिक भारतीय कला का अध्ययन करने के उपरान्त बेन्द्रे इस नतीजे पर पहुँचे कि हमारे देश में कला एवं सौन्दर्य का अक्षय भण्डार है। हम उससे प्रेरित हो सकते हैं और विश्व के अन्य देशों को भी प्रेरित कर सकते हैं। उन्होंने भारतीय कलाकारों को पश्चिमी प्रभावों से बचने का आग्रह किया। इनकी कला पर मुख्यतः राजपूत और बंगाल स्कूल के साथ चीनी और जापानी कला की गहरी छाप दिखाई देती है। बेन्द्रे के अधिकांश चित्र आकृतिमूलक हैं। मूर्त की चरम सीमा पर पहुँच कर वे अमूर्त कला की ओर मुड़े।[3] इनकी कलाकृतियों में व्यक्त होने वाली अनुभूति की तीव्रता कलाकारों को प्रेरणा देती है।

कर्नाटक प्रदेश के 'कोटिगिरी कृष्ण हैब्बार' भारत के उन आधुनिक कलाकारों की श्रेणी में आते हैं, जिन्होंने भारतीय कला परम्परा और विषयवस्तु को अपनी कला का अभिन्न अंग बनाया और अपने सृ्ज़न में भारतीय जीवन के विविध पहलुओं को प्रस्तुत करना उचित समझा। इसलिए वह अभिव्यक्ति के स्तर पर अपनी परम्परा व संस्कारों से जुड़े रहे। कलाकार हैब्बार की इस विचार धारा के पोषक हैं, इसलिए हैब्बार की कलाशैली उन्हें प्रभावित करती है। टेकनीक और शिल्प की दृष्टि से हैब्बार के अभिनव कलारूप, नूतन प्रतीक विधान, काल्पनिक नियोजन और रेखाओं की भाव–विभोरता में एक नवीन सृ्ज़न और सौन्दर्य का अद्‌भुत समागम दिखई पड़ता है। इनके चित्र आधुनिक जीवन के

संधर्ष व तनाव से दूर शांति, आनन्द, आशा और मानवीय संवेदनाओं से ओत–प्रोत अत्यंत सरल और आकर्षक हैं। इनकी कला में एक आत्मीयता का आभास होता है। जो कलाकारों की अंतर्अनुभूत प्रेरणा को पोषित करता है। कला को नवीन प्रेरणा मिलती है जो आगे चलकर पुष्पित एवं पल्लवित होती है। वास्तव में कलाकारों के व्यक्तित्व विचार धारा तथा कला की आधारशिला के सिंचन में भारतीय कला, कला कुरूओं, कलाकारों, विशिष्ट चरित्रों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जिनसे प्रेरणा ग्रहण करके अपनी कला साधना को सीचतें हैं।

व्यापक रूप देखें तो प्राविधि रचना सम्बन्धी वह प्रकिया है, जिसे किसी निश्चित विचार के आधार पर प्रयुक्त करते है। कलाकार के लिए तकनीक व्याकरण का ज्ञान किसी कलाकृति को विशिष्ट बनाने के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना कि किसी कवि और साहित्य के लिए क्रमशः छन्द शास्त्र और भाव का ज्ञान। निष्कर्षतः विधि मानव निर्मित घटनाओं के पर्यावरण से सामन्जस्य के आधार से होता है और साथ ही व संशलिष्ट सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं के साथ स्वतः को समेकित करती है।[4]

अतः सृजनात्मकता संतुलन, भाव एवं तकनीक का एक ऐसा संतुलन है, जिसमें चाक्षुष सौन्दर्य अपनी चरम अभिव्यक्ति पा सके। कलाकार अपने भाव प्रदर्शित करने के लिए किसी भौतिक माध्यम का शरण लेता है, जो उसे सहज ही उपलब्ध हो सके। इन नए माध्यमों और साधनों से नवीन कला के स्वरूपों एवं विधियों के जन्म हुए। कला क्षेत्र में आश्चर्यजनक परिवर्तनों से अद्भुद परिणाम सामने आए। "आधुनिक समय में मौलिकता को कला का एक मुख्य अंग माना जाता है यह मौलिकता अभिव्यक्ति में होती है और अभिव्यक्ति का आधार तकनीक है, इसलिये तकनीक में मौलिकता का होना नितान्त आवश्यक हो जाता है। चित्रकला में तकनीक का आधार कलाकार की सूझ–बूझ, तूलिका शक्ति और अभिव्यक्ति का नाया दृष्टिकोण होता है, तूलिका और रंग के अभिनव प्रयोग द्वारा ही कलाकार की तकनीक बनती है।"[5] माध्यम कृति का उद्देश्य नहीं है, परन्तु सहायक साधन आवश्य है जैसा कि यामिनी राय कहते थे कि आधार चाहे जैसा भी हो कोई फर्क नहीं पडता। मुख्य चीज तो उस पर बना हुआ वह चित्र होता है।[6] माध्यम चाहे आदिमानव द्वारा प्रयुक्त मिट्टी रेत या पत्थर, हड्डी या लकडी हो चाहे वह सोना चॉदी हो, या पन्द्रहवी–शताब्दी के फेस्को चित्र हो या आज के तैल रंग चित्र, ये सभी सिर्फ एक माध्यम है, परन्तु कला एक सृजन प्रक्रिया है और इसी के चलते कलाकार की सृजनात्मकता माध्यम को अपने अनुरूप बना लेती है। यद्यपि यह चित्र का भैतिक तत्व है तथापि इसी के द्वारा की गयी नितान्त व्यक्तिगत आकॉंक्षाएं, विचार और भाव उभर कर चित्रों में समा जाते हैं।

बहुदा कलाकार संस्कारों और परम्पराओं को अपनी जमीन बनाए रखने के बावजूद कहीं न कहीं बन्धनमुक्त रहते हैं। ये वो कलाकार हैं जो हमेशा पुरातन के प्रति विश्वास और भविष्य की अपेक्षाएं रखते हैं। ये शैलीगत विशिष्टताओं को नए सॉंचे में ढाल कर, अपनी रूचि और आवश्यकतानुसार रंगों और आकारों के नवीन प्रयोंगों से तकनीकी कौशल को प्रदर्शित करते हैं चाहे वह चित्र कला हो अथवा अन्य कला। अटूट धीरज, गहन सोच, गहरी अर्न्तदृष्टि और असीम संवेदनशीलता के साथ रचनाए करते हैं। अपने स्वभाव, अनुभवों और परिवेश के अनुकूल किसी विशेष माध्यम को महत्व देते या न देते हुए भी अपने अंतः स्थल के भावों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। कलाकार अपनी प्रवृत्ति

के अनुरूप विविध माध्यमों का चयन करते हुए अपनी तकनीकी कौशल का परिचय देते रहते है।

अनेकों तकनीक में से एक पारम्परिक वाश पद्धति का अगर हम विश्लेषण करें तो, इस पद्धिति के अन्तर्गत तरल रंग (वाटर कलर) को पेन्ट ब्रश के माध्यम से चित्रतल पर लगा दिया जाता है। अपारदर्शी सफेद या काले रंग का प्रयोग या तो वाश पद्धति के अन्तर्गत नहीं करते हैं या फिर चित्र निर्माण के अन्तिम चरणों में किया जाता है। वाश पद्धति के अन्तर्गत रंगों के प्रयोग का अपना विशिष्ट तरीका होता है। वाश का शाब्दिक अर्थ "धोने" से सम्बन्धित है। जल रंगों के उपयोग की इस नई विधा का प्रारम्भ भाारतवर्ष में बंगाल स्कूल की स्थापना के साथ हुआ, जिसका श्रेय अवनीन्द्र नाथ टैगोर को जाता है। सर्वप्रथम चित्रतल पर हल्की पेंसिल से रेखांकन करने के बाद चित्र में इच्छानुसार जल रंग भरकर सूखा लेते हैं फिर रंगों को स्थायी करने के लिए पानी में भिगोकर पुनः सुखाया जाता है। अगले चरण में कागज के सूखने के बाद रेखांकित चित्र को रंगो सं भर दिया जाता है। यहाँ यह उल्लखनीय है कि प्रत्येक रंग का प्रयोग तीन दशाओं (टोन्स) में किया जाता है– विशिष्टता जन्य टोन, मध्य टोन एवं गहराई सम्बन्धित। मध्य टोन का रंग सर्वप्रथम चुना जाता है। तत्पश्चात इसमें पानी मिलाकर हाईलाइट कलर (विशिष्टता जन्य) निर्मित किया जाता है एवं गहराई के लिए मध्य टोन के रंग में एक गहरा रंग मिलाया जाता है। मध्य टोन का रंग ही चित्र का आभासी रंग होता है। इसके पश्चात रंगों को भी उसी तरह स्थायी किया जाता है जैसे पानी में भिगोकर रेखांकन को। अगले चरण में पृष्ठभूमि मे रंग का प्रयोग करते हैं, जिसे पुनः पूर्वोक्त विधि से स्थायी किया जाता है। इसके पश्चात वाश प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। पेंन्टिंग के इस चरण में आकर सफेद रंग का इस्तेमाल प्रचुरता से किया जाता है जो कि इससे पूर्व नहीं किया जाता। वाश रंगों की तैयारी के बाद चित्र को पुनः पानी में गीला कर दिया जाता है तत्पश्चात वाश रंगो का प्रयोग किया जाता। इसमें कोनों के रंग सबसे गहरे होते हैं। वाश चरण के पूर्ण होने से पहले ही चित्रकार को एक सूखे ब्रश की मदद से चित्र से अतिरिक्त वाश कलर हटाना होता है और चित्र को ऐसी स्थिति में छोड़ देना होता है कि अतिरिक्त वाश रंग चित्र के सूखने से पहले बह जाये। अन्त में चित्र के सूखने के बाद रंगे हुए हिस्से पर पानी तैराकर एवं सुखा कर वाश रंगों को स्थायी किया जाता है। इस समस्त प्रक्रिया के उपरान्त अगर चित्र का वांछित प्रभाव एक वाश में प्राप्त हो जाता है तो चित्र पूर्ण माना जाता है अन्यथा पूर्ण प्रक्रिया पुनः दोहराई जाती है। सामान्यतः चित्र का प्रभाव दो वाश के बाद परिलक्षित होने लगता है लेकिन गहरे प्रभाव हेतु वाश प्रक्रिया को पुनः दोहराया जा सकता है। जैसे छितिन्द्र नाथ के बने "द बर्थ ऑफ गंगा" के चित्रों में सामान्यतः चार वाश का प्रयोग किया गया है। वाश चित्रों को समाप्त करते समय चेहरे, उँगलियों, परिधानों एवं आभूषणों को गहराई सम्बन्धित (डेप्थ कलर) से रंगा जाता है और जहाँ ज्यादा गहराई की आवश्यकता होती है यथा जोड़, मोड, चुन्नट इत्यादि में अतिरिक्त गहराई की रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। वाश चित्रण में जिस स्थान पर हाईलाइट का प्रभाव दिखना होता है वहाँ कागज की मूल सफेदी को आरम्भ से ही छोड़कर रखते हैं कहीं सफेदी का प्रभाव रखना हो तो वहाँ पर किसी भी रंग का हल्का वाश बहुत सावधानी और d”qkyrkiwoZd fn;k tkrk gSA[7] और चित्र थोडा गीला रहते ही अपेक्षाकृत कडे ब्रश से कागज के रंग को धिसकर उसके मूल अंश को उद्धृत (निकालकर) करके भी हाईलाइट का प्रभाव बखूबी दिया जा सकता है।[8]

वाश चित्रण की इस पारम्परिक विधि के अतिरिक्त कुछ अन्य विधियाँ भी प्रचलित हैं। जिन्हें चित्रकार अपनी सुविधानुसार अपनाते हैं। वाश तकनीक में जलरंगों के अलावा अन्य माध्यमों यथा टेम्परा, स्याही, क्रेयान व पेस्टल रंगों का भी प्रयोग किया जा सकता है। चित्र में बरसात, कोहरा या धुआँ दिखने के लिए या अपारदर्शिता दिखाने हेतु सफेद रंग के साथ आवश्यकतानुसार किसी पारदर्शी रंग को मिलाकर गीली–गीली जमीन पर पतला वाश दे दिया जाता है। कभी–कभी चित्र के विशेष गीले अंश पर ब्रश की नोक से सफेद रंग छिड़क देने से वह रंग अपने आप धीरे–धीरे फैलकर मेघ का आकार ले लेता है। इस प्रकार के सफेद रंग मिलाये रंग के वाश से चित्र मे रंग और रेखा का काम बहुत कोमल दिखता है।[9] तत्पश्चात चित्र थोडा गीला रहते ही अपेक्षाकृत कड़े ब्रश से कागज के रंग को घिसकर उसके मूलअंश को उद्धत (निकाल) कर के भी हाईलाइट का प्रभाव बखूबी दिया जा सकता है। अतः वाश चित्रों में चटक रंगों के स्थान पर धुन्धले व अस्पष्ट रंग अद्‌भुत आभा और रहस्यात्मकता का भाव पैदा करते हैं, यही इस तकनीक की विशेषता है।[10] हाथ का बनाया विलायती 'ह्ाटमैन' कागज वाश चित्रण हेतु सर्वाधिक उपयोगी होता है।[11] बारीक रेखांकन के लिए पतले 'सेबल' के ब्रश उपयुक्त माने जाते हैं किन्तु यह उल्लेखनीय है कि चित्रकार अपनी सष्जनात्मकता और प्रयोगधर्मिता के अनुसार अन्य तरह की सामग्रियों का भी प्रयोग करते हैं।

लगभग 1946 में कलागुरू असित कुमार हल्दार द्वारा लखनऊ में भी परिचित करायी गयी शैली "वाश" का वर्चस्व बन चुका था और उस शास्त्रीय शैली से परे जाकर कलाकार उससे अपने आपको अछूता नहीं रख सकता था। लखनऊ स्कूल के लिए यह शैली एक पारम्परिक शैली बन चुकी थी। फ्रैंक वैस्ली, एस0 सेन राय, हरिहर लाल मेढ़ आदि अनेक कलाकार इस शैली में अनेकानेक प्रयोग किए। हालांकि उस समय "वाश" लखनऊ में ही नहीं पूरे भारत में बहुत लोकप्रिय 'शैली' थी, इसका वर्चस्व था और इनके सामानान्तर अन्य पद्धति भित्तिचित्र, लघु चित्र व अन्य कला परम्पराओं की हवा भी मन्द गति से चल रही थी किन्तु 'वाश' पद्धति के अद्‌भुत प्रभावों से कई कलाकार इस कला पद्धति की ओर आकृष्ट हुए। एक परम्परावादी, शान्त, मृदु, रसिक और संवेदनशील 'व्यक्तित्व' को यह पद्धति अत्यन्त अनुकूल लगती क्योंकि इसके द्वारा सृजित पारदर्शी रंग, लालित्य, कोमल, सरल, सपाट प्रवाहपूर्ण रेखाएं और कल्पनात्मकता के लिए असीमित आयामों की सम्भावनाएं, अन्य किसी तकनीक में सम्भव नहीं थी। उन दिनों सामाजिक, राजनैतिक, दैनिक जीवन के विषय अति विस्तारपूर्वक और यथावत् बनाये जाते थे, वर्ण योजना व विषयों के प्रस्तुतिकरण में श्रृंगार होता था, उच्छृंखलता का भाव प्रमुखता से परिलक्षित होता था, रेखाऐं लयात्मक और आकृतियां प्रमाण युक्त हुआ करती थीं। चित्रण व्यवहार में सादगी, शैलीगत भीनी–भीनी सुगन्ध, धुमिल (मध्यम तान) वर्णों आदि का प्रयोग होता था। समय और संयम की प्रतिबद्धता के कारण कलाकारों ने कालान्तर में पारम्परिक वाश चित्रण को छोड़कर अन्य विधाओं में कार्य करना शुरू कर दिया।

संदर्भ ग्रंथ

1 *कलाकार योगेन्द्रनाथ योगी से व्यक्तिगत* साक्षात्कार के आधार पर।
2 स्वर्णलता मिश्रा, *कलातीर्थ अजन्ता,* पृ0 –107
3 प्रेम चन्द्र गोस्वामी , *आधुनिक चित्रकला के आधार स्तम्भ,* पृ0 75

4 "Technique is therefore the basis of all man made phenomena invented to modify the natural environment and adopt it to the necessities of an increasing, complex social life.
"Encyclopedia of World Art, Vol. XIII, P.**966"**

5 रामचन्द्र शुक्ल, *चित्रकला का रसास्वादन,* पृ0**124**

6 यामिनीराय का कथन – "The canvas does not matter, I have little time to think of it – what is on it is the important thing", "Jamini Roy, His Art & His psychology", Henry L. Drake, Horizon part **III** (Autumn '57), P.**33**

7 नन्दलाल बोस, *दृष्टि और सृष्टि,* पृ0**183**

8 नन्दलाल बोस, *दृष्टि और सृष्टि,* पृ0**128**

9 नन्दलाल बोस, *दृष्टि और सृष्टि,* पृ0**128**

10 नैन भटनागर, *बंगाल शैली की चित्रकला* पृ0**106**

11 नन्दलाल बोस, *दृष्टि और सृष्टि,* पृ0**125**